Mere Nath ! மேரே நாத்! मेरे नाथ ! میرے رب!

शरणानन्दजी के शिक्षाप्रद संस्मरण

साभार - तरूतले

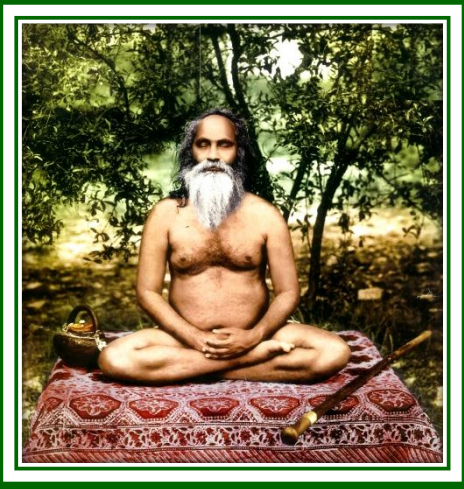

सन्त एक विशाल तरु की तरह होते हैं। उनकी छांह में जो भी रहेगा उसे पत्तों की छाया, फूलों की सुगंध व फलों का आस्वादन स्वतः मिल जाएगा। मुझे तरुतले विश्राम मिला..

श्री रामसुखदासजी महाराज के विचार

शरणानन्दजी के समान मैं मानता नहीं हूँ किसी संत को, मेरे हृदय में बात है ये। मेरे मन की बात कोई पूछे तो शरणानन्दजी बहुत ऊँचे थे। शरणानन्दजी में बहुत सरलता है, परन्तु लोग समझते नहीं। प्रबोधनी में लिखा है 'मैं क्रान्तिकारी संन्यासी हूँ, मेरी बातें ठीक समझे तो हलचल मच जायेगी सब शास्त्रों में, सब दर्शनोंमें।' (Manav Seva Sangh Q- A)

मेरी दृष्टि में बहुत अच्छे महात्मा हैं वो, मेरी दृष्टि में तो ऐसे हैं कि सबसे श्रेष्ठ महात्मा हैं। तत्वज्ञ, जीवनमुक्त महापुरुष जो पहले हो गये, उनमें भी कोई ऐसा दीखता नहीं, ऐसे विशेष हैं। (15.08.1998 - 8.30 hrs.)

इन्होंने ऐसी बारीक-बारीक बढ़िया बातें बतायी हैं, जिसमें पहले वाली बातें उनसे विशेष बातें बतायी हैं। शरणानन्दजी की बातों से बहुत जल्दी परिवर्तन होता है और सबके सिद्धान्त से अगाड़ी हो, ऐसी बातें निकाल के गये हैं। (27.05.2000 - 08.30 hrs.)

शरणानन्दजी की बातें जल्दी समझ में नहीं आतीं। बड़ी विचित्र बातें हैं। ....जितने साधन बताये हैं, सबमें क्रान्ति कर दी, एकदम ! ऐसी विचित्र बातें बतायी हैं जो आदमी के कान खुल जायँ, आँख खुल जाय, होश आ जाय। (05.05.2000 - 16.00 hrs.)

शरणानन्दजी की जो बातें हैं ऐसी बातें मिलती नहीं हैं.... शास्त्रों में मिलती है, तो पीछे मिलती है.... उनकी बातें सुनने के बाद मिलेगी.... किन्तु (पहले) मिलती ही नहीं है.... और इतनी गहरी बातें हैं महाराज.... बहुत विचित्र बातें है.... बहुत विचित्र !! बहुत अकाट्य युक्ति दी उन्होंने.... छहों दर्शन है ना उससे तेज है.... (12.11.1997 - 05.00 hrs.)

शरणानन्दजी के शिक्षाप्रद संस्मरण

साभार - तरुतले

भाग 1

भाग 2

महाराज! इन कमजोर कंधों पर इतना बड़ा बोझ कैसे उठाया जाएगा? देवकीजी! चिंता मत करो। यह शरणानंद का कार्य नहीं, *प्रभु का कार्य है*। तुम देखना, अच्छे-अच्छे लोग आयेंगे, यह काम तो होगा ही। ...तरुतले का प्रकाशन उस मशाल को जलाए रखने का एक लघु व विनम्र प्रयास है। इसके पढ़ने का बड़ा लाभ यह हो रहा है कि सुधिजनों में शरणानन्दजी के साहित्य पढ़ने की रुचि जागृत् हो रही है। गुणोत्तर श्रेणी (Geometrical Progression) में यह साहित्य फैलेगा जिसकी वर्तमान युग में अत्यन्त आवश्यकता है।

B

हे नाथ! मैं जैसा भी हूँ, आपका हूँ।
हे प्रभो! आप जैसे भी हो, मेरे हो।

प्रकाशक : करनाल मानव सेवा संघ
करनाल-132001 (हरियाणा)
श्री प्रेममुर्तिजी Mo: 94164 67999
https://swamisharnanandji.org

द्वितीय संस्करण : सन् 2025 ई. (महाप्रयाण के 50 वर्ष)
मूल्य : ₹ 25
₹ 225 क्रान्तिकारी सन्तवाणी (Deluxe)
₹ 4500 for 10 Volume Set of Hindi Books

Disclaimer :- छप्पन भोग रूपी इस ग्रन्थ का मीठा-मीठा आप खा लेना और कड़वा-कड़वा (त्रुटियाँ) प्रकाशक के लिए छोड़ देना।

ब्रह्मलीन प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्दजी महाराज के जीवन की अंतरंग बातें, घटनाएँ, प्रसंग, मुलाकातें व संस्मरण आदि जानने के लिए website में उपलब्ध मूल तस्वतले पुस्तकें देखें।

अमूल्य चीज भगवान की कृपा से बिना मूल्य मुफ्त में मिलती है। यह पैसों से खरीदी नहीं जाती। -रामसुखदासजी, 17.04.2000.

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

श्री दुलीचंदजी Mo: 79888 86115
करनाल मानव सेवा संघ (हरियाणा)
नजदीक बस स्टैंड, पुराना जी.टी.रोड, करनाल-132 001

श्री प्रेमानन्दजी Mo: 93279 06279
मीना सदन, गणेश सोसायटी, खेड़ब्रह्मा-383255 (गुजरात)

धार्मिक साहित्य सदन Ph. 0141 2570602
बुलियन बिल्डिंग, हल्दियोंका रास्ता, जौहरी बाजार,
जयपुर-302003 (राजस्थान)

मसीहा मेरा सगा भतीजा

श्री शरणानन्दजी महाराज एक बार ट्रेन में बैठे थे। ईसाई मत के एक पादरी साहब भी वहाँ आकर बैठ गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने श्री महाराजजी से पूछा कि आप मसीहा को जानते हैं? इन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया कि जी हाँ, जानता हूँ। पादरी साहब ने फिर प्रश्न किया कि मसीहा के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? इस प्रश्न को सुनकर बड़ी प्रसन्नता एवं कॉन्फिडैन्स के साथ श्री महाराजजी ने कहा कि भाई, मसीहा, खुदा के पुत्र हैं, मैं खुदा का दोस्त हूँ, मसीहा मेरा सगा भतीजा है, मैं उसको अच्छी तरह जानता हूँ। मसीहा मुझे बहुत प्यारा लगता है।

.... एक गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी मसीहा को अपना सगा सम्बन्धी मानता है और आत्मीयता के नाते प्यार करता है -ऐसे सम्बन्ध की कल्पना भी पादरी साहब नहीं कर सकते होंगे।

शॉर्टकट

अब अंतिम पाठ जो मिला वह भी सुन लीजिये। पूज्य महाराजजी ने शरीर छोड़ा 25 दिसम्बर 1974 (क्रिसमस डे) को। उससे 20-25 दिन पहले मैं भरतपुर से वृन्दावन दर्शन को गया था। भगतजी के साथ जाता ही रहता था बीमारी का हालचाल लेने। स्वामीजी और पापा तख़्त के पास बैठे थे। कोई रोकने-टोकने वाला नहीं था। चरण स्पर्श किया, तो महाराज बोले कौन है? मैंने कहा महाराज! मैं ..... भगतजी के साथ आया हूँ। अच्छा-अच्छा, पूछो क्या प्रश्न हैं? महाराज! आपका शरीर बीमार है, ऐसे में क्या पूछूँ? तो बोले- अरे! शरीर तो शरारत करता ही रहता है, तुम अपना काम बना लो। मैं उन दिनों सत्संग में जाता, तो मेरा एक ही प्रश्न रहता था कि शॉर्टकट चाहिए। उस समय भी वही याद आ गया। मैंने कहा, महाराज! मंजिल दूर है, कोई ऐसा शॉर्टकट बताइये, जो कल से प्रारम्भ कर सकूँ। स्वामीजी एकदम बोल उठे- किसी को बुरा मत समझो। किसी का बुरा मत चाहो। समझ में आया? मैंने कहा, हाँ महाराज! वे आगे बोले- किसी के साथ कभी कोई बुराई मत करो। ये बातें नोट कर लो और कल से शुरू नहीं करना है, अभी से करना है।

आज का संस्मरण लिखते समय मन भारी हो गया है। महाराजजी तो क्या थे, क्या बताऊँ? बल्कि अब तो मैं कहता हूँ कि वे क्या नहीं थे?

दो तो यहीं मौजूद हैं

भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद थे- तब की बात है। स्वामीजी के साथ बातें हो रही थीं। प्रसंगवश स्वामीजी ने फरमाया कि, 'बाबूजी! देश का नेतावर्ग जब मिनिस्टर बन जाय तब देश का नेतृत्व कौन करेगा?'

राजेंद्र बाबू ने कहा, 'महाराज! आप जिस स्तर की चर्चा करते हैं, उस स्तर की भावना और चरित्र वाले व्यक्ति देश में कहाँ मिलेंगे?'

स्वामीजी ने तत्काल कहा, कि 'दो तो यहीं मौजूद हैं।'

उत्तर सुनकर राजेन्द्र बाबू निरुत्तर हो गए और वातावरण में हँसी की लहर फैल गई।

गलत प्रश्न

स्वामीजी महाराज से पहला पाठ मिला था, सुख उसका दास है, जो सुख का दास नहीं है। भरतपुर से दो-तीन जने हम लोग वृन्दावन गए थे। स्वामीजी ने पूछा- बोलो ..... भाई, क्या सुनना चाहते हो? मैंने वैसे ही बोल दिया- महाराज! सुख-शान्ति चाहिए। कहने लगे। तुम्हारा प्रश्न ही गलत है। जो सुख चाहता है, उसे शांति कभी नहीं मिलती। सब चुप हो गये, क्या जवाब देते। स्वामीजी कब छोड़ने वाले थे, कहा- अच्छा ये बताओ, सुख चाहते हो या सुख की गुलामी? हम सब चुप। तो कंधे पर हाथ रखा और बोले, भैया, सुख उसका दास है, जो सुख का दास नहीं है।

भगवान् ऐसे नहीं मिलेंगे

स्वामी शरणानन्दजी महाराज नित्य टब-बाथ लिया करते थे। घटना वृन्दावन आश्रम की है। एक माताजी ने आश्रम में उनके स्नान करने के पश्चात् बचे टब के पानी में से एक चुल्लू पानी लेकर अपने मुँह में डाल लिया। किसीने उन्हें यह करते देख लिया तो इसकी चर्चा उन्होंने स्वामीजी महाराज से की। स्वामीजी ने उन माताजी को बुलाकर पूछा तो उन्होंने इसकी पुष्टि की। स्वामीजी महाराज ने, डाँटते हुए कहा- 'माताजी! भला किसी के शरीर का गन्दा पानी अपने शरीर में डालने से भगवान् मिलेंगे? यह आपने ठीक नहीं किया।'

यह कहकर स्वामीजी मौन हो गए।

तेरी आँखें किस काम आयेंगी?

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज शारीरिक रूप से दृष्टिविहीन थे। श्री हरिहरनाथजी महाराज (जिन्हें नाथजी महाराज के नाम से पुकारा जाता था) का आश्रम मझेवला (कडैल, जिला अजमेर) में था। दोनों संत जीवन में लगभग 30 वर्षों तक साथ रहे। उनके अनुसार स्वामीजी महाराज 10-11 वर्ष की उम्र में दृष्टि खो बैठे थे। यह उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है कि स्वमीजी ने अपने सांसारिक जीवन के बारे में कभी किसी से चर्चा नहीं की।

स्वामीजी से कोई भक्त पूछ बैठा, 'महाराज आपके दृष्टि तो है नहीं आपका काम कैसे चलता है?'

स्वामीजी ने तपाक से उत्तर दिया, 'भले आदमी! तेरी आँखें किस काम आयेंगी?'

श्रुति का ज्ञान, पाठशाला एवं पाठ

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज जिज्ञासु तो थे ही। एक बार उनमें शास्त्रों के अध्ययन की तीव्र इच्छा जागृत् हुई। अपनी इस इच्छा की चर्चा उन्होंने अपने गुरु से की।

गुरूजी ने फरमाया, 'बेटा! ठहरी हुई बुद्धि में श्रुति का ज्ञान स्वतः प्रकट होता है। जिसकी पाठशाला है एकांत तथा पाठ है मौन।'

गुरु कितने सही थे? शरणानन्दजी का सारा साहित्य बिना किसी शास्त्रीय उद्धरण के है तथा कर्मकांड से रहित है। फिर भी किसी शास्त्र से कम नहीं है। जीवन जीने की कला का सार है, मानवता का प्रतीक है।

फक्कड़ जो थे

कुछ साधक वृंदावन आए। मानव सेवा संघ के आश्रम में ठहरे। ठहरने-खाने आदि की सुंदर व्यवस्था थी। भक्तजन जाने लगे तब स्वामीजी के प्रति बोले कि महाराज आपकी कृपा से हमारी व्यवस्था बहुत उत्तम हुई।

भक्तों को यह आभास नहीं था कि वे एक अनौपचारिक और फक्कड़ संत से चर्चा कर रहे थे। स्वामीजी बोल पड़े, 'अरे यार! कम से कम मेरे मुंह पर तो गाली मत दे।'

इसी प्रकार स्वामीजी साधकों के निमंत्रण पर भरतपुर आए। सत्संग समाप्त होने पर स्वामीजी के परम भक्त .... व .... व अन्य भक्तों ने उनके प्रति आभार व्यक्त किया व धन्यवाद दिया।

स्वामी तपाक से बोले, 'धन्यवाद किसको? मुझे या आपको।'

फक्कड़ जो थे।

सातवाँ दर्शन

दशकों बाद एक अन्य पहुँचे हुए संत स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज ने स्वतंत्र रूप से इस बात की पुष्टि कर दी कि शरणानन्दजी का दर्शन सातवाँ दर्शन है। उन्होंने ऋषिकेश में कुछ भक्तों को संबोधित करते हुए फरमाया कि 'भारत षट्दर्शन (छः दर्शन) के लिए प्रसिद्ध है जिनमें देवी-देवताओं के प्रसंग व स्तुतियाँ हैं। परन्तु शरणानन्दजी महाराज का दर्शन सातवाँ दर्शन है जिसमें मानव की स्तुति की गयी है। मानव जीवन की महिमा का वर्णन जितना व जिस प्रकार उनके दर्शन व साहित्य में किया गया है, वह अन्य किसी दर्शन व साहित्य में नहीं है।'

मुझे सुनने नहीं, आपको देखने आते हैं

राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़ियाजी की उपस्थिति में टीकमचन्द जैन हाई स्कूल, अजमेर में शरणानन्दजी महाराज का कार्यक्रम था। मंत्री जी बोले, राज्य में हजारों विद्यालय, चिकित्सालय खोलकर सरकार भी मानव सेवा संस्था का कार्य कर रही है।

स्वामीजी बोले, 'विद्यालय खोले, चिकित्सालय खोले, बहुत अच्छी बात है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है मानव में मानवता भरना।' स्पष्टवादी प्रज्ञाचक्षु सन्त ने जब जाना कि भीड़ बहुत अधिक है तो बोले, 'अधिकांश लोग यहाँ मुझे सुनने नहीं आपको (मंत्रीजी को) देखने आते हैं।'

भव रोग का उपचार

ईश्वर की अहैतुकी कृपा से मानव-जीवन, सत्संग का मौका तथा *सन्त* मिलते हैं। शरणानन्दजी महाराज भरतपुर ठहरे थे। हम लोग रोज दर्शन को जाते थे। उस दिन जब उन्हें पता चला कि मेरे सिर में पीड़ा है, जबर्दस्ती मुझे अपने पास खींच लिया। गाय का घी, कपूर, चंदन और जाने क्या-क्या शीशी में से लेकर मलने लगे। मैं शर्म से गड़ा जा रहा था। उनकी मजबूत पकड़- शिकंजे से 10 - 15 मिनट बाद छूटने को मिला। आज महसूस हो रहा है कि वह केवल सिर की पीड़ा का उपचार नहीं, भवरोग का उपचार संत ने किया था। ऐसा लगता है कि आज भी उनका हाथ मेरे सिर पर है।

आवश्यकता से पूर्व आवश्यक वस्तु मिल जाएगी

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज ने एक बार फरमाया था कि अगर तुम-

- वस्तु को अपना नहीं मानोगे,
- वस्तु का संग्रह नहीं करोगे तथा
- वस्तु का दुरुपयोग नहीं करोगे

तो आवश्यक वस्तु आपकी आवश्यकता से पूर्व आपको मिल जाएगी।

थोडा ठहर कर पुनः कहा कि उपरोक्त बात मैं केवल आस्था के आधार पर नहीं कह रहा हूँ, अनुभव-सिद्ध आधार पर कह रहा हूँ।

धिक्कार है मुझे- कि

स्वामी श्री शरणानन्दजी की वाणी से एक वाक्य निकला। कहने लगे कि- 'देखो तो, उनका प्रेमी स्वभाव!! मानव हृदय के प्रेम का आदर करने के लिए वह अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक, पूर्णब्रह्म परमात्मा, ब्रह्मभाव का त्याग करके, जीवभाव स्वीकार करते हैं, शबरी के बेर, गोपियों के दही-छाछ, विदुरानी के छिलके खाने के लिए।' तो ब्रह्म, ब्रह्मभाव छोड़ करके, जीवभाव स्वीकार करके तुम्हारे पास आता है और उनको प्रेम प्रदान करने के लिए तुम अपनी तुच्छ कामनाओं का त्याग नहीं कर सकते? तो मैं अपने को सोचने लगी कि 'धिक्कार है मुझे- कि मैं अपनी कामनाओं का त्याग न करूँ उनके प्रेम के लिए।'

– देवकी माताजी

देख लिया तुमने संसार का स्वरूप

26 वर्षीय मेरे ज्येष्ठ भ्राता के आकस्मिक निधन के दुःखद समाचार रुंधे हुए कंठ से देते हुए पिताजी (शरणानन्दजी महाराज) बोले, 'बेटा! तुम्हारे भाई ने इस असार संसार से सदा के लिए विदा ले ली है।' सुनकर मैं तो किंकर्तव्य विमूढ़- अवाक् हो गई। भाई के मृतक शरीर के पास संत आए और सिर पर हाथ रखकर कल्याण कामना की। मुझे भीतर से लगा कि संत की करुणा ने अकालमृत्यु के ग्रास बने प्राणी का सदा-सदा के लिए उद्धार कर दिया। दाह-संस्कार के पश्चात् मुझे बोले, 'बेटा! अब तुम्हें अनुभव हो रहा होगा कि सिवाय प्रभु के कोई भी संसार में अपना करके नहीं है। देख लिया तुमने संसार का स्वरुप। फिर भी तुम संसार में फंसना चाहोगी?' मैंने कहा, 'बिल्कुल नहीं पिताजी।' गर्म लोहे पर की गयी चोट उसके आकार को बदल देती है। ऐसे ही करुणामय संत ने इस जीवन की दिशा बदल दी। मैं कृतार्थ हो गयी।

ईसा ने ऐसा कभी नहीं कहा

महाराजजी! ईसाई लोग कहते हैं कि मुक्ति (उद्धार) चाहने वालों को ईसामसीह को मानना व उनमें विश्वास करना आवश्यक है। तो क्या अन्य मान्यता वालों के लिए मुक्ति का मार्ग बंद है?

शरणानन्दजी महाराज थोड़ी देर के लिए सुट्ट हो गए। फिर भरे हुए गले से बोले- भैया! मैं ईसा को अच्छी तरह जानता हूँ। मेरी जानकारी में ईसा ने ऐसा कभी नहीं कहा। हाँ....! उनके नाम पर दुकानें चलाने वाले लोग भले ही यह प्रचार करते हों। ....यह बोलकर स्वामीजी मौन हो गए जैसे किसी गहरे में उतर गए हों। (क्योंकि ऐसा गलत प्रचार आज सब जगह देखने को मिलता है!!)

हमारा मौलिक प्रश्न

भोग की रुचि का नाश तथा सरस जीवन की प्राप्ति का जो मौलिक प्रश्न है उसको हल करने के लिये ही हमें मिले हुए शरीर के द्वारा परिवार की, समाज की तथा संसार की सेवा करनी है, अपना सुख नहीं लेना है। शरीर और संसार का परस्पर निर्वाह सिद्ध होने के लिए मिली हुई वस्तु यानी शरीर, योग्यता, परिस्थिति, सामर्थ्य आदि का भोग न करें, अपितु परहित में इनका सदुपयोग प्राप्त विवेक के प्रकाश में करें। इससे भोग की रुचि का नाश होकर जीवन सरस हो जाएगा। अपने में ही प्रेम तत्व की अभिव्यक्ति हो जाएगी तथा जीवन का मौलिक प्रश्न सदा सदा के लिए हल हो जाएगा।

भगवान् के यहाँ स्थान

विनोदी स्वाभाव वाले सक्सेनाजी ने ट्रेन में समय काटने के लिये शरणानन्दजी महाराज से पूछा, स्वामीजी महाराज! मेरा जीवन बहुत ही व्यस्त और भोग प्रधान है। रात-दिन बड़े लोगों के बीच, तामसी खानपान, रात्रि देर तक जागना आदि में बीतता है। शराब-पार्टी तो मामूली बात है। क्या हमारे जैसे आदमी के लिए भी भगवान् के यहां कोई स्थान है या नहीं ?

स्वामीजी ने बड़े ध्यान से मेरी बात सुनी और मैं मेरी पत्नी, पुत्र से बहुत प्यार करता हूँ वो जानकारी भी ली और भगवान् का प्यार पाने के लिए आगे से परिवार से दो-गुना प्यार करने को कहा।

महाराज! दो गुना क्या दस गुना प्यार दे सकता हूँ.....

स्वामीजी : तुम प्यार का मतलब भी समझते हो? कहीं मोह, ममता, आसक्ति तो नहीं करते?

मैं सोचने लगा मामला टेढ़ा है। जब मैंने कहा मैं पत्नी के लिए सब कुछ कर सकता हूँ- जान दे सकता हूँ। तब स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सके ऐसा स्वामीजी का प्रश्न था- वह तुमसे प्यार न करे, किसी अन्य से करे, क्या तब भी जान दे सकते हो?

मैंने भावावेश में कहा, तत्काल उसे देरी किये बिना उसी समय शूट कर दूंगा।

स्वामीजी ने सहजता से फरमाया, भैया! इसे प्रेम नहीं कहते। यह तो आसक्ति है। प्रेम के बदले प्रेम- यह प्रेम की परिभाषा ही नहीं है। बुरे से बुरे व्यक्ति को भी तुम प्रेम कर सको, उसकी सेवा कर सको तो तुमको भगवान् के यहाँ स्थान मिल सकता है। मैंने सन्त के चरण पकड़ लिए।

लोग कितनी भावना से वस्तु लाते हैं

शरणानन्दजी महाराज भिक्षा की वस्तु का सदुपयोग करना, उसे खराब न होने देना, इस बात का बहुत ध्यान रखते थे; साथ वालों को भी यही सिखाते थे।

एक बार ग्रीष्म ऋतु में ट्रेन सफर के दौरान लोगों के द्वारा जगह-जगह दूध, फल, मिठाई, सब्जी, पूड़ी आदि अर्पित वस्तुओं में से साथ वालों की आइस-बॉक्स में न रखने की भूल के कारण दूध फट गया। 'लोग कितनी भावना से वस्तु लाते हैं, भिक्षा की वस्तु का आदर किया करो'-का सबक देने के लिये, स्वामीजी ने सभी को डाँटा और आग्रहपूर्वक फटा दूध तबियत खराब हो जाने की परवाह किये बिना, स्वयं पी गये। पीने के बाद बोले, भविष्य में तुम लोग ऐसी असावधानी नहीं करोगे इसीलिए मैंने दूध पिया।

तुम्हारी नीयत क्या है?

पाई-पाई चुकाने की नीयत रखने वाले, घाटे से कर्जदार दुःखी सज्जन ने शरणानन्दजी महाराज से कहा कि, महाराज! मैं बड़ी ईमानदारी से शुद्ध देशी घी का व्यापार करता हूँ। यदि मैं कर्ज लेकर मरूँगा तो मेरा कल्याण कैसे होगा?

महाराजजी ने फरमाया, यदि तुम्हारी नीयत साफ है तो कर्जा अवश्य चुकेगा और यदि बिना चुकाए मर गये तो तुम्हें दोष नहीं लगेगा, क्योंकि नीयत तुम्हारी देने की है। ऐसा समाधान सुनकर सज्जन को राहत मिली। सन्त-कृपा से उनके जीवनकाल में ही उनका पाई-पाई कर्ज उत्तर गया।

ईमानदार बने रहो, बस! काम बन जाएगा

विज्ञान छात्र से चर्चा के दौरान शरणानन्दजी ने कहा, जब तुम काम कर रहे होते हो, तब तुम्हारा मन काम में रहता है और जब काम में नहीं लगे होते हो तब? जोर से हँसते हुए स्वामीजी बोले- लो हम बता देते हैं, भगवान् में!

तत्काल छात्र ने प्रतिक्रिया दी- मैं भगवान् में विश्वास नहीं करता। वह नहीं है।

स्वामीजी फिर जोर से हँसे और बोले- हाँ, वह नहीं भी है। भला, नहीं में उनके सिवाय और कौन हो सकता है? मर्माहत छात्र के हाथों को अपने हाथों में लेकर झकझोरते हुए स्वामीजी बोले- भैया! तुम ईमानदार हो। ईमानदार बने रहो, बस! काम बन जाएगा, तुम्हारा भी और समाज का भी, भगवान् से मेरा व्यक्तिगत नाता है। लो, पूरी और आचार खाओ। छात्र स्तब्ध होकर स्वामीजी की ओर निहारने लगा।

भक्त का मान न टलते देखा

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन में जेल गए शरणानन्दजी से जेलर ने कहा- नियमानुसार आप यहाँ गेरुए वस्त्र नहीं पहन सकते। स्वामीजी ने अपना कटिवस्त्र उतार कर देते हुए कहा संन्यास-धर्म के नियमानुसार जेल के सफेद वस्त्र मैं नहीं पहन सकता। महाराज जी अवधूत की तरह बिना वस्त्र अपनी मस्ती में मस्त रहे।

उधर लगभग साढ़े तीन सौ लोगों के लिये जेल में जो खिचड़ी पकाई जा रही थी वो कितना सारा ईंधन फूंकने के बाद भी, कितना पानी डालने के बाद भी पकती नहीं थी। भगवत्-भक्त, सन्त-महात्मा को कष्ट पहुँचाने के कारण सम्भव है खिचड़ी नहीं पक रही हो। जेलर ने गेरुए वस्त्र लौटाते हुए क्षमा मांगी और खिचड़ी पक गई।

स्वामीजी ने कहा कि- भैरया, रसोई न पकने में मेरा कोई हाथ नहीं है। आपने जेल के नियम का पालन किया और मैंने संन्यास के नियम का। इससे अधिक मैंने कुछ नहीं किया है। कहते हैं, भक्त का मान न टलते देखा।

सो स्वाद तो कहीं नहीं था

महाराजजी (स्वामी श्री शरणानन्दजी) कहते थे, 'भाई, रावण और कंस को मारने के लिये थोड़े ही उनको कुछ करना था। गोस्वामीजी ने लिखा है, 'भृकुटि विलास सृष्टि लय होई।' जिसके संकल्प मात्र से सारी सृष्टि भस्म हो सकती है, उसको रावण और कंस को मारने के लिए अवतार ग्रहण करने की क्या आवश्यकता थी? भक्तों का प्रेम भाव ग्रहण करने के लिए प्रभु को आना पड़ता है क्योंकि वहाँ तो भृकुटि विलास से काम नहीं चल सकता है। विदुरानी (विदुर जी की स्त्री) के केले के छिलके, शबरी मैय्या के झूठे बेरों को खाने का मजा विश्वंभर (विश्व का भरण-पोषण करने वाले) को गोलोक और साकेत में बैठकर भी नहीं आता!! भक्तों के प्रेम में जो स्वाद था, सो स्वाद तो कहीं नहीं था।

अनंत के प्रतिरूप

1952 में मानव सेवा संघ, वृन्दावन की स्थापना करने वाले शरणानन्दजी महाराज का नियम था कि- आश्रम की भूमि में नहीं रहेंगे एवं आश्रम का अन्न, जल, दूध आदि कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे (बहुत बड़ी बात है)। अन्यत्र रहने में महाराज जी को होने वाले बहुत कष्ट को ध्यान में रखकर भक्तजनों ने संतकुटी का निर्माण करवाया। करुणापूरित संत ने भक्तों की प्रार्थना स्वीकार करके (लगभग 17 वर्ष बाद) 1969 के आसपास आश्रम में निवास करना प्रारम्भ किया। (25.12.1974 ब्रह्मलीन हुए)

लगभग अन्तिम 5 वर्ष का निवास मानव सेवा संघ वृन्दावन के दौरान आश्रम में नया उत्साह एवं आनंद व्याप्त हो गया। संतकुटी सबके आकर्षण का केंद्र बन गई। अनंत की प्रियता, अनंत का माधुर्य, अनंत की उदारता, अनंत की करुणा- सब कुछ था उनमें। सचमुच वे अनंत के प्रतिरूप थे।

मंत्र-दीक्षा तथा अभयदान

मैं कालेज-छात्रा थी तब मंत्र दीक्षा के लिए पू. पिताजी (स्वामी शरणानन्दजी महाराज) से मैंने निवेदन किया। स्वामीजी महाराज ने फरमाया, 'मैं मंत्र-दीक्षा नहीं देता। मैं तो मानव बनने की दीक्षा देता हूं।' और तत्काल मुझसे निम्न पांच वाक्य दोहरवाये। बोले-

1. मेरा कुछ नहीं है।
2. मुझे कुछ नहीं चाहिए।
3. प्रभु मेरे अपने हैं।
4. सब कुछ प्रभु का है।
5. उनका प्रेम ही मेरा जीवन है।

पांचों वाक्य दोहरवा कर बोले-

'जाओ हो गई दीक्षा।'

मुझे बड़ा ही बल मिला कि संत ने प्रभु की शरणागति दिलवाकर अभयदान दे दिया।

गुलामों को ऐसी हँसी नहीं आया करती

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज विचार विनिमय के दौरान कभी-कभी ऐसी खुली व उन्मुक्त हँसी हँसते थे कि उनकी दाढ़ी हिलोरें खाने लगतीं। दर्शक व श्रोता मुग्ध हो जाते थे। किसी कार्यक्रम में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोहनलालजी सुखाड़ियाजी भी थे जिन्होंने स्वामीजी महाराज का वह मुक्त हास्य देखा। कार्यक्रम समाप्ति के पश्चात् सुखाड़ियाजी ने स्वामीजी के साथ आए किन्हीं साथी से इस बात की चर्चा की और कहा- 'हमें कभी ऐसी उन्मुक्त हँसी नहीं आती।' उनके जाने के पश्चात् साथी ने इसकी जानकारी स्वामीजी को दी तो स्वामीजी के श्रीमुख से निकला, 'गुलामों को ऐसी हँसी नहीं आया करती।'

दिव्य प्रेम का प्रक्षेपण

1963 में देर रात्रि की ट्रेन से जयपुर से अहमदाबाद जाते हुए, बड़े आदमियों के बीच में घिरे शरणानन्दजी महाराज के साथ सब कुछ छोड़कर उनके साथ हो लूं के भाव एम्. ए. का विद्यार्थी न कह सका! गार्ड ने सीटी दे दी, अचानक स्वामीजी डिब्बे के प्रवेश द्वार पर आकर बोले- वो विद्यार्थी कहाँ है, क्या कहना चाहता है? चरण स्पर्श करके मैंने कहा- मैं सदैव आपके साथ हो लेना चाहता हूँ। उत्तर मिला- बेटा! 'किसी महापुरुष के साथ रहने से कोई बड़ा नहीं होता। उनकी वाणी का अनुसरण करने पर ही महानता की प्राप्ति होती है।' एक क्षण रुककर फिर बोले- 'अच्छा! अचाह व स्वाधीन होकर प्रेमी हो जाओ, काम बन जाएगा।' सिर पर के दुलार से मैं अद्भुत रोमांच अनुभव कर रहा था, जैसे स्वामीजी ने इस देह में दिव्य प्रेम का प्रक्षेपण कर दिया हो।

भविष्य तुम्हारा उज्ज्वल हो जाएगा

जयपुर स्थित प्रेम निकेतन आश्रम में सहपरिवार रहनेवाले मंत्री ने अपने व्यक्तिगत जीवन संबंधी समस्याओं का विवरण टाइपशुदा दो पृष्ठों में शरणानन्दजी को भेजा। पत्र पहुँचते ही स्वामीजी ने वृन्दावन आश्रम बुलाया। मैं तत्काल चला गया। स्वामीजी ने पत्र पढ़कर सुनाने को कहा। फिर बड़ी आत्मीयता से बोले- 'तुम्हारे जीवन में अभाव है और प्रभाव भी है। बेटा! वर्तमान निर्दोष होता है। अब आगे से तुम वर्तमान की निर्दोषता को सुरक्षित रखो। की हुई भूलों को दोहराओ मत, तो भविष्य तुम्हारा उज्ज्वल हो जाएगा।' फिर हाथ पकड़कर मुझे अपने पास खींच लिया थपथपाया और बोले, 'जाओ! तुम्हारा कल्याण होगा।'

अहं पर चोट

1970 में अहमदाबाद के टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज सभा कक्ष में अध्यापन एवं शिक्षण संबंधित शरणानन्दजी महाराज का प्रवचन था। मैं महाराज जी की सेवा में था। संयोजक महोदय ने आग्रह करके स्वामीजी के पास मेरी कुर्सी लगवा दी, इससे मैंने बहुत ही आत्मसुख व गौरव का अनुभव किया। स्वामीजी महाराज प्रवचन आरम्भ में बोले- 'हमारे साथ में पी.एच.डी. पढ़ा-लिखा प्रोफेसर है; हम शब्द कुछ बोलते हैं और वह लिख कुछ और ही देता है.....' सुनते ही मेरे आत्मसुख और गर्व का पारा उतर गया। अहं पर चोट जो पड़ी थी।

करुणा और प्रेम का दिव्य समन्दर

1967 में इटावा के सत्संग कार्यक्रम पर अधिक ब्लडप्रेशर तथा मधुमेह के कारण पू. देवकी दीदी का कठोर निर्देश मुझे था कि विश्राम के समय शरणानन्दजी महाराज को जगावे नहीं। दोपहर की तेज धूप में एक गरीब बूढ़ी माताजी दर्शन करने दूर गाँव से आईं। महाराज जी की तबियत खराब है, विश्राम में है, आप यहाँ बैठो। इतनी देर में स्वामी जी बोले, 'कौन आया है? रोको मत, भीतर आने दो।' महाराज जी! आप विश्राम कर लें.... स्वामी जी बोले, 'मेरे कर्तव्य को मत समझाओ, आने वाले को आने दो।' सुनते ही माई कमरे में घुस गई और मीठी राब का कुल्हड़ स्वामी जी के हाथ में थमा कर बोली, 'महाराज! यह मेरे हाथ की मीठी राब है, पी लो। मेरा जीवन धन्य हो जाएगा।' उस क्षण डॉक्टरों का परामर्श, दीदी का कड़ा अनुशासन व मेरी चौकसी धरे रह गई। महाराज जी ने मीठी राब का सारा कुल्हड़ गटागट पी डाला। उनके चेहरे पर करुणा और प्रेम के दिव्य समन्दर की छवि देखकर मैं अभिभूत हो गया।

व्यथा व बेबसी

1967 में महामंत्री के दायित्वपूर्ण पद पर होते हुए .....ने स्वामीजी से परामर्श किये बिना आगामी सत्संग की तिथियाँ निर्धारित कर दी थीं। संयोग से वे तिथियाँ पहले से ही किसी अन्य स्थान के लिए निर्धारित की जा चुकी थीं। ऐसी लापरवाही व प्रमाद के लिये शरणानन्दजी महाराज ने जोर से डाँट पिलाई। थोड़ी देर बाद भूल के लिए क्षमा माँगने पर महाराजजी करुणित होकर बड़े प्रेम से बोले, 'भैया! साधक का अधूरापन व प्रमाद देखकर मैं व्यथित हो जाता हूँ जो मेरी बेबसी है। बाद में तो उसके दुःख से मुझे स्वयं को भी दुःख होता है। पर साधक की गलतियाँ मुझसे देखी नहीं जातीं।'

व्यक्तिगत हित व सीमित आत्मसुख

1968 में देवलाली स्थित अत्यन्त रमणीय व शान्त स्थान पर आयोजित भोजन की अति सुंदर व्यवस्था सहित भव्य सत्संग-समारोह से प्रभावित होकर मैंने शरणानन्दजी महाराज से निवेदन किया- 'महाराज! मैं भी ऐसे किसी एकान्त स्थान पर आवासित होकर साधना (शांति-संपादन) करना चाहता हूँ।' स्वामी जी ने कहा, 'भैया! तुमने मानव सेवा संघ के दर्शन को गहराई से नहीं समझा है। यह तो तुम व्यक्तिगत हित की बात सोच रहे हो, जिसमें सीमित आत्मसुख की भावना टपकती है। सच्ची साधना परिस्थिति विशेष के आश्रित होने से नहीं हुआ करती। प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करने से होती है।' यह कहकर स्वामीजी मौन हो गए। फिर विनोदपूर्ण भाषा में कहने लगे, 'चलो पहले गरम-गरम कॉफी पी लो, फिर एकान्त-साधना की बात करना।'

दूसरों के अधिकारों की रक्षा

राष्ट्र और राष्ट्रीयता के विषय में स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज के विचार क्रान्तिकारी व मौलिक थे। राजस्थान सरकार के मंत्रीमण्डल को उनसे अवगत कराने के लिए जयपुर के रामनिवास बाग स्थित रवीन्द्र रंगमंच पर 'हम, हमारा देश व हमारा कर्तव्य' विषय पर स्वामीजी के प्रवचन का कार्यक्रम सायंकाल 5 बजे का रखा गया। स्वामीजी 4.50 पर स्थल के निकट पहुँच गये तो उन्होंने 100 गज पहले ही गाड़ी यह कहकर रुकवा दी कि- 'देखो ....भाई! जैसे देर से पहुँचने से श्रोतागणों के अधिकार का हनन होता है वैसे ही जल्दी पहुँचने से आयोजकों के लिए धर्म संकट खड़ा हो जाता है। अपने को तो हर परिस्थिति में दूसरों के अधिकारों की रक्षा करनी है।' मैं स्वामीजी की जागरुकता के प्रति नतमस्तक था।

यह तो बेवकूफवाद है

महाराज जी! हम तो भौतिकवाद का मतलब खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ समझते हैं...

शरणानन्दजी : 'नहीं, बिलकुल नहीं। यह तो बेवक़ूफ़वाद है। सच्चे भौतिकवादी की प्रत्येक प्रवृत्ति परहित के लिए होती है। वह कर्म सामग्री को दूसरों के अधिकार की रक्षा में लगाता है, भोग में नहीं। भोगी तो भोग भोगता है अपनी मर्जी से और दुःख भोगता है विवश होकर जिसे बेवकूफी ही कहेंगे। अतः सच्चे भौतिकवादी के जीवन में सुख भोग के लिए कोई स्थान नहीं होता। सेवा करके करने के राग से मुक्त हो चिरविश्राम की प्राप्ति करना ही उसका लक्ष्य होता है। ..... सच्चे भौतिकवादी को भी वही जीवन मिलता है जो अध्यात्मवादी या आस्तिकवादी को।'

बाल सेवा ही प्रभु-पूजा

शरणानन्दजी महाराज ने 18-19 वर्ष की उम्र में संन्यास लिया तब गुरु ने कह दिया- 'बेटा! जब तुम आजाद हो जाओगे तो सारी प्रकृति तुम्हारी सेवा के लिए लालायित रहेगी, चराचर जगत् तुम्हारी आवश्यकता पूर्ति के लिए तत्पर रहेगा।'

स्वामीजी के जीवन में यह बात प्रत्यक्ष रूप से देखी कि- वस्तुएँ बिना माँगे आवश्यकता के पूर्व स्वतः ही उनको मिलती रहतीं किंतु वे स्वयं उनका भोग न करके दूसरों के लिए उपयोग करते थे। ग्रीष्मकाल में आमों से भरी टोकरियाँ आती तो छांटकर, भिगोकर, बड़े प्यार से पहले बाल मंदिर की बालिकाओं को देते थे। वे तो बाल सेवा को प्रभु-पूजा मानते थे।

पीर हरो हरि, पीर हरो

कुतिया के पिल्ले को कोई उठा ले जाने के कारण शरणानन्दजी महाराज की कुटी के बाहर रात को जोर-जोर से काफी देर से रोने वाली कुतिया के दुःख से अत्यन्त करुणित होकर महाराज जी कहने लगे, 'हे प्रभु! यह तो मोह की पीड़ा से पीड़ित है, इसकी पीड़ा दूर करो।' रात्रि में महाराज जी ने 'पीर हरो हरि, पीर हरो हरि' प्रार्थना की। प्रातः काल किन्हीं अनजान व्यक्ति ने लाकर पिल्ले को कुतिया के पास रख दिया। कुतिया रोना बंद कर प्रसन्नता से पिल्ले को चाटने लगी, प्यार करने लगी। यह देखकर महाराज जी भी प्रसन्न हो गए।

कोई और नहीं, कोई गैर नहीं

25 दिसम्बर 1974 ई. को, जो हिन्दुओं के लिए गीता-जयंती (मोक्षदा एकादशी) दिवस, क्रिस्तानों के लिये बड़ा दिन और मुसलमानों के लिए ईद-उल-जुहा का दिन था, शरणानन्दजी महाराज का निर्वाण हुआ। उनकी हिदायत के अनुसार उनकी कोई समाधि नहीं बनी। वे व्यक्ति-पूजा के खिलाफ थे। यहां तक कि उन्होंने अपनी पुस्तकों में अपना नाम भी नहीं देने दिया (गीताप्रेस से प्रकाशित हिन्दी तथा गुजराती एक महात्मा का प्रसाद पुस्तक में आज भी उनका नाम नहीं दिया जाता)। आज वृन्दावन आश्रम की सन्त-कुटी में टंगी तख्ती पर लिखे दो वाक्य, 'कोई और नहीं, कोई गैर नहीं'- अमर सूक्तियों के उस लाडले, विरले संत की मार्मिक स्मृतियाँ जगा जाते हैं और स्मरण मात्र से मन का मैल छंटने लगता है। स्वामीजी के जीवन का सारांश है कि- 'सेवा, त्याग और प्रेम में ही मानव-जीवन की पूर्णता निहित है।'

कहो यार! कैसी कही?

एक महापुरुष शरणानन्दजी के पास आए और बोले- 'महाराज! मैं वेद और उपनिषद् चाट गया। शास्त्र-पुराण सब पढ़ गया। अनेक ग्रन्थ कंठाग्र हैं। वर्षोंसे असंख्य जिज्ञासुओं के प्रश्न का उत्तर-समाधान करता रहा हूँ। किन्तु महाराज! मुझे कुछ हाथ नहीं लगा। कोरा का कोरा हूँ' और वे अत्यन्त द्रवित हो गए। उनके अश्रुपात होने लगा। मैंने एकान्त में स्वामीजी से पूछा- महाराज! जब इन महापुरुषों की यह दशा है तब हम जैसों की क्या गति होगी? स्वामीजी ठहाका मारते बोले- 'अध्ययन ईंधन है, जले तो मुक्ति न जले तो बंधन। उनके आंसू के रूप में धुआँ निकल रहा है भाई, जो इस बात का लक्षण है कि लकड़ी में आग लग चुकी है। उन्होंने अपने माथे पर वेद-पुराण का भारी गट्ठर लाद रखा था, सो उन्हें पहुँचने में देर हुई। भारी बोझ लेकर चलने वालों को देर होती ही है। तुम्हारे माथे पर हल्का बोझ है, जल्दी पहुंच जाओगे। बोझा पटक दो तो और जल्दी।' फिर जोर का ठहाका- 'कहो यार, कैसी कही!' मैं स्तब्ध रह गया कि पाँचवे दर्जेतक पढ़ा यह अंधा साधु, बोध के किस क्षितिज पर रहता है और किस प्रकार इसने शास्त्र और साहित्य के मर्म को सम्पुटित कर रखा है। फिर तो मैं स्वामीजी के अधिक समर्पित हुआ। कई बार भ्रमण में भी साथ रहा।

उन्हें भी मिलता ईश्वर ही है

शरणानन्दजी महाराज फरमाते थे कि- मैं पक्का ईश्वरवादी हूँ, परन्तु ईश्वरवाद का प्रचारक नहीं हूँ। क्या मेरा भगवान् इतना घटिया है जो मैं उनके लिए कहूँ कि उन्हें याद करो, उनके नाम की माला जपो। सौ दफा गरज होवे तो उनको याद करो, उनकी पूजा करो। मैं क्यों कहूँ? मैं तो कहता हूँ कि दुनिया में कोई भगवान् को न माने...., 'मैं' और 'है' केवल दो रह जायेंगे तो भी काम बन जायगा।

किसी अन्य प्रसंग में स्वामीजी महाराज ने फरमाया था- 'जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, लेकिन उनके विधान को मानते हैं, उन्हें भी मिलता ईश्वर ही है। क्योंकि मैं, यह और वह- ये तीन ही हैं। चौथी चीज सृष्टि में है ही नहीं। अतः 'है' के अर्थ में केवल वही रह जाता है जो है। उसे ईश्वर कहो या परमात्मा- एक ही बात है।

उसी को मैं ईश्वर कहता हूँ

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज एवं श्री जे. कृष्णमूर्तिजी जीवन में केवल एक ही बार मिले थे। चर्चा में निषेधात्मक विचारधारा के लिए चर्चित कृष्णमूर्तिजी ने स्वयं निषेधात्मक विचार को कैसे अस्वीकृत कर दिया था, यह स्पष्टीकरण बहुत ही महत्वपूर्ण था। (Refer audio 11B) उसी बैठक में एक और प्रमुख विचार पर चर्चा में स्वामीजी ने पूछा, 'एक विचार के बाद जब दूसरा विचार आता है तो दोनों विचारों के बीच आप कहाँ रहते हैं?'

कृष्णमूर्तिजी: रहता तो हूँ पर बता नहीं सकता कि कहाँ रहता हूँ।

स्वामीजी ने फरमाया, 'दो विचारों के बीच की उस स्थिति को ही मैं ईश्वर कहता हूँ।' सम्भवतः उनका आशय था कि जब मैं नहीं रहता तब ईश्वर रहता है। थोड़ा चुप रहने के पश्चात् कृष्णमूर्तिजी ने कहा- इस पर मैं विचार करूँगा।

जागृत् स्थिति में सुषुप्तिवत्

मैं धर्म से जैन हूँ। कर्मकांड से रहित भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित, विवेक पर आधारित सिद्धान्तों का मैंने अध्ययन किया। मैं केकड़ी कस्बे में रहा, जो दार्शनिक चर्चाओं और शास्त्रार्थों का गढ़ रहा। अन्धविश्वास और सिद्धान्तरहित आस्था में मेरी कोई रुचि नहीं थी। बड़े तार्किकों से मेरा संपर्क रहा। स्वामी रामसुखदासजी एवं स्वामी शरणानन्दजी के प्रति श्रद्धा रखने वाले बीकानेर के .....ने मुझे 'जीवन दर्शन' पुस्तक पढ़ने को दी। मुझे ऐसा लगा कि मैं धर्म नहीं विज्ञान पढ़ रहा हूँ। उसमें सिद्धान्तों का प्रतिपादन नैसर्गिक नियमों पर आधारित था। ....मेरी मुलाकात उनसे अजमेर में हुई। मैंने केकड़ी कब पधारोगे पूछा तो बोले 'फुटबॉल को क्या मालूम कि खिलाडी (भगवान्) कब और किधर किक लगाएगा?' ....केकड़ी में आस्तिक व नास्तिक विद्वानों का जमावड़ा लगा, काफी चर्चाएँ हुईं, जिसके सटीक उत्तर शरणानन्दजी ने दिए। और बोले पहली बार मैंने ऐसा स्थान देखा जहाँ दार्शनिक ही दार्शनिक रहते हैं- जिज्ञासु कोई नहीं। आज का मेरा दिन व्यर्थ गया। किसी ने अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ नहीं रखी और समाधान नहीं पूछा।.... फिर निर्विकल्प तो दीवारें होती हैं, कोई उदाहरण हो तो बताएं प्रश्न के जवाब में बोले, आप स्वयं ही गहरी नींद में निर्विकल्प होते हैं। मेरा आशय जागृत् अवस्था की निर्विकल्पता से है। जो विवेकपूर्वक समता और कामनारहित होने पर ही होती है। आप स्वयं जब जागृत् स्थिति में सुषुप्तिवत् निर्विकल्प होंगे तभी आप दूसरे व्यक्ति को पहचान सकोगे।

मैं कृतकृत्य पाता हूँ - अपने आपको

मैं बचपन से बहुत तार्किक बुद्धि का था। विचार-गोष्ठी हो, धर्म चर्चा का अवसर हो, कहीं भी जाता तो सबको लाजवाब कर देता था। सबको चुप कर देता था। शास्त्रीय वाद-विवाद में भाग लेने की वृत्ति से मैंने अनेक धर्मग्रंथो का अध्ययन भी किया। जैन ग्रन्थों का गहराई से और बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म आदि अनेक धर्मों के ग्रन्थों को भी पढ़ा, परंतु मेरे प्रश्नों का पूरा समाधान मुझे लम्बे समय तक नहीं मिला। सन् 1954 के लगभग स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज से मिलना हुआ। उनके दर्शन आधारित मूल साहित्य के अध्ययन से मेरा समाधान होता गया। आज मैं .... कह सकता हूँ कि- 'शरणानन्दजी के साहित्य में जो समाधान मुझे मिला और मेरे सारे प्रश्नों का ऐसा सटीक उत्तर मिला कि, न सिर्फ धार्मिक मामलों में ही, बल्कि सृष्टि के रहस्यों की जानकारी करने के लिए जो ज्ञान चाहिए- वह मुझे अनायास इस संत के साहित्य में मिल गया। अब मेरे जीवन में कोई अनसुलझा प्रश्न नहीं बचा– ऐसा मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ। मैं कृतकृत्य पाता हूँ अपने आपको।

यह मन, है क्या?

स्वामीजी! मन अब तक नहीं मरा। यह मन, है क्या? शरणानन्दजी- बलपूर्वक मारने की जितनी चेष्टा करेंगे, मन उतना ही प्रबल होगा। आप ही की सत्ता से सत्ता पाकर मन आप पर शासन करता है। मन से असहयोग करो। मन के जुलूस को देखते रहिए उसमें शामिल न होइए। मजा आ जाएगा। मुश्किल यह है कि आप चाहते हैं क्रान्ति और करते हैं आन्दोलन। आन्दोलन है बलपूर्वक अपनी बात दूसरों से मनवाना और क्रान्ति है हर्षपूर्वक कष्ट सहकर तपना, स्वयं को बदलना और दूसरे पर प्रभाव होने देना। आप बदल जाओगे तो मन अपने आप बदल जाएगा। जीवन में क्रान्ति आ जाएगी।

.... भोगे हुए (भुक्त) और जो भोगना चाहते हैं (अभुक्त) के प्रभाव के अतिरिक्त मन कुछ नहीं है। भोग के प्रभाव का नाम मन, भोग के परिणाम का नाम शोक, तथा भोग की रुचि का नाम बुराई है। भोग की रुचि (कारण) का नाश नहीं होगा तब तक कार्य अर्थात् मन का नाश न होगा। ....राधाजी बेमन की हो गयी थीं। उन्होंने मन के सारे संकल्प समर्पित कर दिए थे, उनका अपना कोई संकल्प नहीं रह गया था। और हमारा हाल है कि हम सारे संकल्प अपने लिए रखते हैं, उनका भार ढ़ोते रहना चाहते हैं और चाहते हैं कि मन का नाश हो जाय। यह असम्भव है।

अपना मूल्य संसार से कभी नहीं घटाना

1974 में एम.ए. उत्तीर्ण के बाद बी.एड. करके नौकरी करने का विचार जानकर शरणानन्दजी बोले- 'डिग्री प्राप्त कर लेने मात्र से समस्या हल नहीं होती। अब पढ़ने की तृष्णा मत करो, जीवन का अध्ययन करो। सेवक के जीवन में रुचि पूर्ति का कोई स्थान नहीं है। सेवापरायण साधक के जीवन में नौकरी सब से बड़ी बाधा है यह बात तुम्हारी समझ में नौकरी मिलने पर ही आयेगी। मेरी बात ध्यान से सुनना। ब्रह्मचर्य से रहना है, तो सादा खाना, सादा पहनना, सादगी से रहना। कामना और वासना में फंसा व्यक्ति दृश्य जगत् के चक्कर में आकर पराजित हो जाता है। संसार को अपने पर हावी मत होने देना। अपना मूल्य संसार से कभी नहीं घटाना।

शरणानंद का दर्शन

अपने दर्शन में श्रद्धा कर लो, शरणानंद का दर्शन हो गया। अगर आपका दर्शन जगत् की सत्ता को स्वीकार करता है तो आप घबरायें नहीं। भले ही दूसरे दर्शन वाले जगत् मिथ्या या अनित्य कहें। बस आप उनसे विरोध न करें। जगत् की सत्ता स्वीकार करने वाले का साधन होगा– विवेक-विरोधी कर्म का त्याग। इससे आप किसीका बुरा नहीं चाहेंगे- तो दुखियों को देखकर करुणित और सुखियों को देखकर प्रसन्न होंगे जिससे सुख-भोग की रुचि तथा काम का नाश होगा और आप अध्यात्म दर्शन में प्रवेश पायेंगे और जगत् की सत्ता स्वतः अस्वीकार हो जाएगी। और उससे आपको अपने ही में अपने प्रेमास्पद की प्राप्ति होगी। आपका अस्तित्व केवल प्रेम होगा जो आस्तिक दर्शन है। भौतिक दर्शन का भी जीवन में वही स्थान है जो अध्यात्म-दर्शन और आस्तिक-दर्शन का है। साधन का आरम्भ किसी भी दर्शन से हो, समस्त दर्शनों का फल अथवा यों कहो समस्त साधनों की सिद्धि आपको प्राप्त हो जाएगी। साधन के निर्माण का साधन है- सत्संग, और सत्संग का स्वरुप है- अपने जाने हुए असत् का त्याग! -सन्तवाणी

विचारों का नाश नहीं होगा, क्रांति आयेगी, जरूर आयेगी

आजादी के पश्चात् भ्रष्टाचार से कोई क्षेत्र नहीं बचने से घोर व्यथित, देश की गिरती हुई दशा से पीड़ित और इसके इलाज से बिल्कुल अंधकार या निराश क्रान्तिकारी लोकनायक जयप्रकाश नारायण 15.02.1973 को शरणानन्दजी से मिले। स्वामीजी बोले- 'बलपूर्वक दूसरों को बुराई से रोकने का अर्थ है आन्दोलन और स्वयं हर्षपूर्वक कष्ट सहके भी बुराई रहित होकर दूसरों को प्रभावित होने देने का अर्थ है क्रान्ति। क्रान्ति के बिना परिस्थिति बदलने से कुछ नहीं होगा। 1930 से 1935 तक हमने नौकरशाही, टैक्स, मशीन आदि का विरोध किया, परंतु उन्हीं चीजों को हमने आजादी के बाद कसकर पकड़ लिया। पर निराश न होना चाहिए। शरीर का नाश भले ही हो जाए, विचारों का नाश नहीं होगा। वे काम करेंगे। क्रान्ति आयेगी, जरूर आएगी।'

बड़ा ही पुनीत संयोग

-संत-शिरोमणि शरणानन्दजी-

1. वस्तु खिंचती है धरती की ओर।

2. 'मैं' खिंचता है अनंत की ओर।

शरीरों को लेकर संसार से आकर्षित सुख-दुःख का भोगी मनुष्य और 'स्व' को लेकर अनंत से आकर्षित साधन में लगा मनुष्य, बहुत सा समय इसी मिश्रण द्वन्द में गंवा देता है। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से शरीर और संसार की एकता अटूट है। अध्यात्म एवं आस्तिक विज्ञान की दृष्टि से मैं और अनंत परमात्मा की एकता अविच्छिन्न है। अतः शरीर को संसार की सेवा में खपा दो और स्वयं को परमात्मा की प्रीति में लय कर दो- समस्या है ही नहीं। समस्या तब है जब हम शरीर के संग से संसार बंधन तोड़ना और शरीर के तादात्म्य काल में अनंत से अभिन्न होना चाहते हैं, जो सर्वथा असम्भव है। मानव जीवन की लौकिक, पारलौकिक सभी समस्याओं का समाधान तथा परिपूर्णता सेवा, त्याग, प्रेम में ही है।

(क) शरीर विश्व के काम आ जाय- यह है 'सेवा'

(ख) अहम् अभिमान शून्य हो जाय- यह है 'त्याग'

(ग) हृदय प्रीति से परिपूर्ण हो जाय- यह है 'प्रेम'

मानव जीवन पाकर अपने कल्याण एवं सुन्दर समाज के निर्माण का बड़ा ही पुनीत संयोग सत्यदर्शी संत ने बताया है। -देवकी माताजी

होनहार बिरवान के होत चीकने पात

तीन वर्ष के बालक की बड़ी-बड़ी आँखों से आकर्षित होकर रमता योगी भिक्षा लेना भूलकर शरणानन्दजी के ललाट को एकटक निहारने लगा। 'तेरे लल्ला को हाथ देखनो चाहूँ, मैया!.....' 'तेरो लाला कै तो बड़ो राजा होगो, नहीं तो सिद्ध जोगी तो होगो ही, या में तो कोउ संदेह नाय....' लंबे डग भरता हुआ योगी गाता जा रहा था-

मुनि वशिष्ठ से पंडित ज्ञानी,
सोधि कै लगन धरी।
सीता हरण मरण दशरथ को
बन में विपति परी।

(लगभग 9 वर्ष की आयु में शरणानन्दजी की सुंदर आँखें चली गयी थी)

– देवकीजी

ऊँचे दर्जेका शिष्य

मुझे स्वामीजी का चित्र चाहिए, क्या स्वीकृति मिलेगी? लोगों ने बताया– महाराज जी चित्र पसंद नहीं करते। मन में आया कौनसा महाराज जी को दिखाई देता है? अपनी होशियारी से फ़ोटो खिंचवा लूँगा। फोटोग्राफर को कहकर मैं सत्संग में एक तरफ बैठ गया। शुरु में प्रार्थना होती है लेकिन उस दिन महाराज जी प्रार्थना के पहले ही बोल उठे –

जो शिष्य गुरु का चित्र लेकर पूजा-सेवा करे, - है तो प्रेमी, पर है घटिया दर्ज़ेका।

और जो शिष्य, चित्र लेकर, गुरु की बात पर चले, -वह भी प्रेमी है -पर है दोयम् दर्जेका।

ऊँचे दर्जेका शिष्य वह है जिसे गुरु के चित्र की जरूरत ही नहीं पड़े, और उसकी बतायी बात पर अमल करे।

महाराज जी (शरणानन्दजी) की ये बातें सुनकर, मेरी कैसी हालत हुई, सो बता नहीं सकता। वह फ़ोटो आज भी मेरी अलमारी में ज्यों-का-त्यों बंद पड़ा है।

शरीर विश्व रूपी वाटिका की खाद बन जाए

8 वर्ष की उम्र से मुझे पिताजी के माध्यम से शरणानन्दजी महाराज की बातें मिलने लगी–

हमें जो कुछ भी प्राप्त है वह प्रभु की अहैतुकी कृपा से मिला है जिसका सदुपयोग जगत् की सेवा में करना चाहिए। सेवा जगत् के लिए, त्याग अपने लिए तथा प्रीत प्रभु के लिए उपयोगी होती है। करने में सावधान तथा होने में प्रसन्न। आदि

बाद में ऋषिकेश देवकी माताजी की बातें सुनने का सुअवसर प्राप्त होता रहा। मुझे निश्चय हो गया कि सारे जगत् को नारायण स्वरुप जानकर उसकी सेवा करने में ही सार है। इसी प्रेरणा से .... की स्थापना हुई। मेरा प्रयत्न है कि इस संस्थान के माध्यम से सपरिवार जगत् की इतनी अहंशून्य सेवा कर सकूँ कि– 'यह शरीर विश्वरूपी वाटिका की खाद बन जाए।'

उसमें बदबू होती ही नहीं

वे (शरणानन्दजी महाराज) जहाँ कहीं भी मिलते, मुझे गले लगाकर ही आदर और प्यार देते थे। मैं अत्यन्त गरीब था। भोजन की बात तो दूर, कपड़ों की सफाई का साधन तक नहीं था। महाराज जी! मुझे दूर से आशीर्वाद दिया करें। उन्होंने पूछा क्या कोई कष्ट प्रतीत हुआ भइया? मैंने कहा, नहीं, मेरे शरीर और कपड़ों से बदबू आती है। वे बोले– मैं जिसे प्यार करता हूँ उसमें बदबू होती ही नहीं। यह सुनकर मैं भाव-विभोर हो गया। उनके प्यार और वात्सल्य से मैं कृतार्थ हो गया।

इनमें जरूर अश्रद्धा हो जाएगी

स्वामी शरणानन्दजी महाराज के सत्संग कार्यक्रम में एक दिन निश्चित समय पर केवल दो ही साधक पधारे। उपस्थिति बढ़ जाने से कार्यक्रम आरम्भ करने के आयोजक के विचार को जानकर स्वामीजी बोले– जो लोग निश्चित समय पर नहीं आते हैं उनमें कितनी श्रद्धा होगी वो अनुमान मैं नहीं लगा सकता, लेकिन ये जो दो साधक पधारे हैं, इनमें जरूर अश्रद्धा हो जाएगी कि स्वामीजी महाराज का सत्संग निश्चित समय पर नहीं होता है। और सत्संग आरम्भ कर दिया।

महाराज जी! अन्य कार्यक्रमों की अपेक्षा उपस्थिति कम क्यों रहती है? ..... भैया! यह सत्संग तो संसद की तरह से है जिसमें केवल चुने हुए प्रतिनिधि ही पधारते हैं।

तो संसार भी परमात्मा है

पुण्डरीक जी की अपने माता-पिता की सेवा में इतनी लगन थी, इतनी पवित्रता थी, इतनी निष्कामता थी कि उनकी निर्मल भावना का आदर करने के लिए, उसका आनंद लेने के लिए, उनके दर्शन करने के लिए, परमात्मा को बिना आए रहा नहीं गया । विट पर पाँव रखकर उस भक्त की भावना का मजा लेने के लिए, उस निःस्पृह सेवक की तन्मयता का रस लेने के लिए, त्रिभुवन पति ईंट पर भी खड़े रह गए। इसलिए उनको विट्ठल भगवान् कहा जाता है। तो शरणानन्दजी महाराज की वाणी कितनी सत्य है कि –

कामना लेकर परमात्मा के पास जाओगे, तो परमात्मा भी संसार है और निष्काम होकर संसार में रहोगे, तो संसार भी परमात्मा है।

– देवकी माताजी

अहम् रूपी अणु का विस्फोट

एकनाथजी गंगाजल रामेश्वरम् पर चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे, रास्ते में प्यासा गधा मिला तो शंकर जी पर न चढ़ाके गधे को पिला दिया। और आनंद की मस्ती में कहने लगे– मैं गंगाजल लेकर रामेश्वरम् तक पहुँचूँ, इतनी देर भी मेरे शंकर ने प्रतीक्षा नहीं की और वे आ गए। तात्पर्य यह है कि जिसने केवल उस प्रभु को अपना स्वीकार किया, उसके प्यार को ही जीवन का लक्ष्य माना, उसके अन्तः चक्षु खुल जाते हैं, जिससे वह सबमें परमात्मा देख सकता है। तब सब लुप्त हो जाता है, केवल परमात्मा ही रह जाता है। यह प्रेम की दृष्टि है, अहम् रूपी अणु का विस्फोट है।

- देवकी माताजी

तो, जिताने वाले को मजा आता है

दुर्बलता से घिरा हुआ व्यक्ति, अपनी सामर्थ्य अनुसार अपने प्रयास से, अपनी ओर से चेष्टा कर लेता है तो उसके बाद उसके लिये करणीय कुछ भी शेष नहीं है। क्योंकि उतनी ही चेष्टा उससे अपेक्षित है। कितनी बड़ी बात है। अब तो सामर्थ्यवान् की शरण में, परम कृपालु की गोद में आराम करो। तो प्रयत्न चला गया, अहम् का स्फुरण बंद हो गया, गलने लगा, खत्म होने लगा। अब कृपालु की कृपा शक्ति स्वयं ही उसे जाल में से निकालकर उसकी दुर्बलता मिटाती है, मलिनता धोती है, प्रभु प्रेम का पात्र बनाती है। यह प्रक्रिया बड़ी ही आरामदेह है। साधक अपनी ओर से जब हारने लगता है तो, जिताने वाले को मजा आता है।

– देवकी माताजी

द्वारकाधीश भी... रह नहीं सके

राजकुमार सिद्धार्थ ने एक मृतक को देखा, तो उन्हें सब जीवित शरीरों में मृत्यु का दर्शन हो गया (ऐसे ही हरेक घटना के तात्पर्य पर हमारी दृष्टि होनी चाहिये)। हम जिस स्तर के हैं उस स्तर से हमारे विकास का इंतजाम परमात्मा ने किया है, प्रकृति ने किया है। व्यक्तिगत संबंधी तथा सम्पत्ति का राग, मोह, लोभ छोड़ने के लिये उन्हें अपनी न मानकर उनके ट्रस्टी बनकर काम करो। ऐसा करने से हानि-लाभ का संतुलन बिगड़ेगा नहीं। अहम् रूपी अणु की विकृति नाश होकर, उदारता, निर्दोषता, शुद्धता आ जाएगी। हम अनन्त की विभूतियों से मिल करके अनन्त के समान अनन्त हो जाते हैं। अनित्य तत्व भी नित्य प्रेम की धातु में बदल जाते हैं, यह निर्विवाद सत्य है। यह इंतजाम हमारे उसी मालिक ने किया, जिसको हमारा विकास अभीष्ट है। मीराजी का दाह-संस्कार नहीं हुआ। उन्होंने द्वारकाधीश के सामने प्रार्थना की– 'मिल बिछुड़न नहीं कीजे।' तो उनके हृदय का प्रेम इतना बढ़ गया कि द्वारकाधीश भी उनको अपने में मिलाए बिना रह नहीं सके। केवल मीराजी का अलौकिक प्रेमरूपी अहम् ही नहीं, पांचभौतिक तत्वों से बना शरीर भी प्रेम के प्रभाव से प्रेम की धातु में परिवर्तित होकर द्वारकाधीश में विलीन हो गया। ऐसे अलौकिक तत्व अपने में रहते हुए हम ठोकरें खाएँ, अपमान सहें, बड़ी दुःख की बात है!!

– देवकी माताजी

बिलकुल जमीन की बात

अनन्य चिंतन कैसे हो?

शरणानन्दजी– दूसरा कोई है ही नहीं अर्थात् अनन्य.. देखो भाई! परमात्मा उसे नहीं कहते जो सदैव न हो, सर्वत्र न हो, सबका न हो। ....अभी होने से भविष्य की चिंता गयी, अपने में होने से बाहर की तलाश गयी, मेरा अपना होने से प्यारे लगेंगे ही। अर्थात् मेरा अपना परमात्मा मेरे में अभी है। जिस परमात्मा को पाने के लिए निरंतर चिंतित रहते थे, वह तो हमारे में ही है। पक्का आश्वासन मिलने से बड़ी शान्ति मिली, हृदय आनंद से भर गया। ....स्वामीजी तो सीधे छत की बात करते हैं कि – निर्मम-निष्काम हो जाओ। स्वामीजी ने फरमाया– अरे भाई! मैं तो बिलकुल जमीन की बात करता हूँ। ममता-कामना का त्याग किए बिना आदमी अटका ही रहेगा, एक कदम भी आगे बढ़ नहीं पायेगा, इसलिए इस महामंत्र को अपनाना बहुत जरुरी है कि– मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, सर्व समर्थ प्रभु मेरे अपने हैं, सब कुछ उन्हीं का है। महामंत्र को सुनकर मेरी धारणा पक्की हो गयी कि इससे अधिक जानने का कुछ बाकी नहीं रह गया। ('पहली समजो याँ अन्तिमः'– बात यही अपनानी होगी चाहे अभी, चाहे कभी, तो क्यों न अभी?)

केवल आनंदमय स्वतंत्र अस्तित्व

अलौकिक तत्व से प्रीति हो जाने पर, उससे अभिन्नता हो जाने पर समय और स्थान की सीमा समाप्त हो जाती है। शरीर-धर्म छूट जाता है और अलौकिक रस में अहम् समाहित हो जाता है। यह तो सीमित अहंभाव (संकल्प) जब शरीरों के माध्यम से दृश्य जगत् की ओर आकर्षित होता है, तब काल और स्थान का ज्ञान होता है। शरीर से सम्बन्ध जोड़कर जगत् को देखने का राग आदमी को संकल्प पूर्ति में जुटा देता है। अर्थात् सृष्टि से तादात्म्य होते ही दृश्य मौजूद हो जाता है। परंतु हमारा अस्तित्व जो है वह जगत् और शरीर से परे है। शरीर से असंगता होते ही दृष्टि और दृश्य से सम्बन्ध छूट जाता है। केवल आनंदमय स्वतंत्र अस्तित्व रह जाता है।

– देवकी माताजी

सेवा की प्रेरणा का स्त्रोत

शरणानन्दजी महाराज के दर्शन से प्रभावित बहन ..... ने बड़े प्रेम से एक प्रसंग सुनाया–

सर्वोदय के अखिल भारतीय सम्मेलन के अध्यक्ष स्वामीजी ने मित्रों से पूछा– सेवा प्रवृत्ति का प्रेरणा स्त्रोत क्या है? कार्यकर्ताओं में से किसी ने गांधीजी, किसीने विनोबाजी, किसीने जयप्रकाश नारायण का नाम लिया। महाराज जी ने बताया नहीं भाई! यह बात नहीं है। सेवा की प्रेरणा का स्त्रोत है, मानव-हृदय की करुणा अर्थात् सुखी को देखकर प्रसन्न होना और दुःखी को देखकर करुणित होना। जिस हृदय में परपीड़ा से करुणा उमड़ती है, उसी के द्वारा सेवा बनती है। यह करुणा जो है वह प्रभु-प्रेम के समान ही अलौकिक तत्व है, जिसका कभी नाश नहीं होता। क्रिया तो सेवा का बाहरी रूप है।

– देवकी माताजी

जैसे सारा प्रवचन मेरे लिए दिया गया है

मुझे किसी ने सूचना दी कि पाली में एक प्रज्ञाचक्षु (नेत्रहीन) संत नित्य प्रवचन करते हैं, तथा मानव जीवन की गूढ़ से गूढ़ समस्या का समाधान तत्काल कर देते हैं। उनके प्रथम प्रवचन ने ही मुझे मुग्ध व चमत्कृत कर दिया। जैसे सारा प्रवचन मेरे ही लिए दिया गया है। ....मानव जीवन में दो ही परिस्थितियाँ होती हैं– सुखमय या दुःखमय। सुखी को देखकर प्रसन्न होना तथा दुःखी को देखकर करुणित हो जाना, यही जीवन जीने की कला है। जीवन का उद्देश्य है, प्राप्त के सदुपयोग से अपना काम बना लेना। विधान से हमें तीन शक्तियाँ मिली हैं– करने की, जानने की, मानने की। करने की शक्ति का प्रतीक शरीर से संसार के काम आ जाओ। जानने की शक्ति का प्रतीक बुद्धि से अपने को जानकर अहं शून्य हो जाओ। मानने की शक्ति का प्रतीक हृदय को प्रभु-प्रीति से भर लो। उनके सटीक सूत्रों ने मुझे दृष्टि प्रदान की।

– कुछ न चाहो, काम आ जाओ

– कोई और नहीं, कोई गैर नहीं

संजीवनी शक्ति का भंडार उनके दर्शन व साहित्य का मैं भक्त बन गया जिसका कोई भी सूत्र मानव कल्याण करने में समर्थ है।

लाइफ है लाइफ

शरणानन्दजी महाराज ने श्री जे. कृष्णमूर्तिजी से कहा, आप प्रत्येक बात का निषेध करते जाते हैं तो क्या आप अभाव को स्वीकार करते हैं?

श्री कृष्णमूर्तिजी ने तुरन्त कहा, नहीं, नहीं लाइफ है लाइफ है।

इस पर श्री महाराजजी ने कहा, जिसे आप लाइफ (जीवन) कहते हैं उसे यदि मैं परमात्मा कहूँ तो आपको कोई आपत्ति है? सुनकर श्री कृष्णमूर्तिजी मौन हो गए। इस प्रकार परोक्ष रूप से उन्होंने परमात्माकी सत्ताको स्वीकार किया!!

उनकी प्रसन्नता के लिए

स्वामी जी महाराज जब वृंदावन में होते तो प्रतिदिन श्री बाँकेबिहारी के दर्शन करने अवश्य जाते थे। एक दिन एक मित्र ने पूछ लिया, 'महाराजजी! आपको दिखाई तो देता नहीं है- दर्शन कर नहीं सकते, फिर आप मंदिर क्यों जाते हैं।' श्री महाराजजी ने उत्तर दिया, 'भले आदमी! सोचो तो सही- मेरी आंखें नहीं हैं तो क्या ठाकुरजी की भी आंखें नहीं हैं? मैं नहीं देख सकता, परन्तु वो तो मुझे देख लेते हैं। मुझे देखकर उन्हें प्रसन्नता होती है। उनकी प्रसन्नता के लिए मैं मंदिर जाता हूँ।'

कितना सजीव ईश्वर विश्वास है।

स्वामी शरणानंद (एक परिचय)

भैया, मैं तो प्रिया-प्रियतम की फुटबाल हूँ। वे चाहे जिधर ठुकरा दें, उधर चला जाता हूँ, इसमें बड़ा रस है, दोनों की दृष्टि मुझ पर लगी रहती है। ...प्रेम-तत्व की पराकाष्ठा इसी में है कि 'मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, सब कुछ प्रभु का है' तथा कोई 'गैर' नहीं- कोई 'और' नहीं।

जीवन-दर्शन (संत-वाणी)

कुछ न चाहो - काम आ जाओ

शरणानन्दजी की 'क्रान्तिकारी विचारधारा' में साधक को किसी के पदचिन्हों पर नहीं चलना है, अपितु निज विवेक के प्रकाश में रहना है। अर्थात् अपनी आँखों देखना है, अपने पैरों चलना है।

शरणानन्दजी महाराज की क्रान्तिकारी अकाट्य विचारधारा मुसलमान, इसाई, हिन्दू आदि सभी के लिए समानरूप से कल्याणकारी होने की बात को सिद्ध करने के लिए सृष्टिकर्ता ने उनका निर्वाण दिवस (25.12.1974) ऐसा अलौकिक नक्की किया कि उस दिन ईद, गीता-जयन्ती तथा क्रिसमस एक साथ थी।

'सर्वमान्य सत्य' को देश, काल, मत, वर्ग, सम्प्रदाय, मजहब का भेद छू नहीं सकता है। बात वह होनी चाहिये जो व्यक्तिवाद और सम्प्रदायवाद से रहित हो, जिससे हिन्दू, मुसलमान, इसाई आदि सभी लाभ उठा सके !

'मैं तो मानव सेवा संघ के मंच को ऐसा मानता हूँ कि जहाँ पर एक अंग्रेज, एक अमेरिकन, एक रशियन, एक हिन्दू, एक बौद्ध, विभिन्न देशों, विभिन्न मतों के लोग एक साथ बैठे और जीवन के शुद्ध सत्य पर विचार कर सके– इस मंच को ऐसा सुरक्षित रखना है। इस मंच के माध्यम से किसी एक-देशीय साधना की चर्चा कभी नहीं की जाएगी।' – स्वामी शरणानन्दजी

वैश्विक मतभेदों का एक-मात्र समाधान

स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज के सम्पूर्ण साहित्य का 10 Volume में नवीनीकरण तथा क्रान्तिकारी सन्तवाणी ग्रन्थ का आधुनिकरण करनाल मानव सेवा संघ से हुआ है।

क्रांतदर्शी रामसुखदासजी महाराज जगह-जगह अद्वितीय शरणानन्दजी महाराज का अकाट्य साहित्य सुरक्षित रखवाते थे। कृपया आप भी रखिये और औरों के पास भी रखवाइये।